राजाओं के सुकर्मों का श्रेय सवर्ण राजाओं को देने की आदी रही है। आदिवासी भूपाल के बरक्स या राजा भोज के महत्व का यह स्वीकार है। हम अपने समकाल को देखें तो यही नज़ारा दिखलाई दे रहा है। सामंती शौर्य की दक्षिणपंथी-अतीतजीवी हास्यास्पद नौटंकी हमारे सामने है। इतिहास के ऐसे ही कुछ गुमशुदा पृष्ठों को लेखक खोलता है जिसमें भोपाल के कुछ भवनों, सड़कों और घटनाओं की जानकारी मिलती है। संवेदनशील लेखक पुराने शहर के कई दिलचस्प किरदारों के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक जीवन और लोगों के मिजाज का परिचय देता है जिससे इस कृति की पठनीयता में वृद्धि होती है। यह किताब ऐसी पोट्रेट गैलरी है जिसमें बड़े लोगों के अलावा, बल्कि उनसे कहीं अधिक उन आम आदमियों के जीवंत चित्र हैं जिनसे समाज में रौनक होती थी। उसमें हॉकी के फुर्तीले खिलाड़ी हैं तो दार-उल-कोहला के परम आलसी सदस्य हैं। और कमाल की बात है कि आलसियों की इस अद्भुत संस्था के स्थापक प्रसिद्ध शायर जिगर मुरादाबादी थे जो भोपाल आते जाते रहते थे। और उस सद्दा मियां का भी जिक्र है जो जिगर साहब से यह कह सकते थे- 'यार जिगर साहब आप बहुत अच्छे शेर कहते हैं शेर पढ़ते भी खूब हो लेकिन खां तुम हो बला के हराम सूरत।' ये वही शख़्स हैं जिन्होंने बंबई में समुद्र देखकर टिप्पणी की थी- यह तो अपने भोपाल के बड़े तालाब से भी बड़ा है। भोपाल रियासत के धर्मशास्त्री हैं तो फेरी लगाने वाले, तेल बेचने वाले, पहलवान नज़ा दादा और दादा खैरियत जैसे लोग भी अपनी-अपनी खास अदा के साथ वहां उपस्थित हैं। श्याम मुंशी लिखते हैं- 'दादा खैरियत बड़े शहरों में पैदा नहीं होते वह तो छोटे कस्बों में पैदा होते हैं जहां मोहब्बत, खुलूस और इंसानियत होती है। दादा खैरियत आज भी हमारे जहनों में जिंदा हैं और रहेंगे।' लेखक के ज़ेहन में यह बात शायद इसलिए आई कि प्रांत की राजधानी बनकर भोपाल बड़े शहर में बदल गया जहां आधुनिक सभ्यता के सारे गुण हैं बस, मोहब्बत और इंसानियत, भले ही खत्म न हुई हो, किन्तु बेहद तरल हो गई है। भोपाल की पटिया तहज़ीब का मिटना ऐसी ही दुर्घटना है। श्याम मुंशी मानते हैं कि भोपाल में 1992 में हुए फसाद का कारण यह है कि पटिया तहज़ीब खत्म हो गई। इस बिन्दु पर लेखक से शत-प्रतिशत सहमत भले ही न हुआ जा सके पर यह एक बड़ा कारण तो था ही। दरअसल देशव्यापी साम्प्रदायिक तनाव राजनीति की देन थी। किन्तु यह सही है कि पटिया संस्कृति लोगों के आपसी सुख-दुख को बांटने वाली दोस्ताना जीवन पद्धति थी जिसे विकास के नाम पर तोड़ना एक गुनाह जैसा ही था। इस बेहूदे विकास चिंतन पर उसका अफसोस इन शब्दों में व्यक्त होता है- लम्हों की ख़ता थी सदियों ने सजा पाई।

सिर्फ नक्शे कदम रह गए' आद्यंत दिलचस्प और पठनीय है। मैं केवल दो उदाहरणों के माध्यम से उसकी मनोरंजकता और संवेदनशीलता को रेखांकित कर रहा हूं। नवाबों-राजाओं का अपने आसपास कुछ विचित्र चीजों को रखने और नमूने किस्म के आदमियों को पालने का शौक होता था जिससे वे आम आदमियों से भिन्न दिखे अैर चर्चा में बने रहें। शायर ढेंढस ऐसे ही शख़्श थे जिन्हें नवाब हमीदुल्लाह ने अपने किसी महकमे में मुलाज़मत की सूची में नगीने की तरह जड़ा। शायर साहब का तुर्रा यह कि वे कभी दफ्तर नहीं गए लेकिन उनकी तनख्वाह बाकायदा उनके घर पहुंचाई जाती है। एक बार नये सेक्रेटरी साहब विभाग में आए तो यह देखकर, जाहिर है कि उन्हें जायज गुस्सा आया तो उन्होंने ढेंढस साहब की मुअतली का आदेश उनके घर भिजवा दिया। ढेंढस ने साहब के कारिन्दे को रोका और मुअतली के कागज के पीछे शेर लिखकर वापस दे दिया।

शाने लकब सुनते थे बरतरफी और बहाली

यह मुअतली किस भोसड़ीवाले ने निकाली

जब नाराज सेक्रेटरी ने नवाब साहब से इस हरकत की शिकायत की तो उन्होंने कहा- सेक्रेटरी साहब, ढेंढस का जवाब देखने के बाद भी आपकी समझ में नहीं आया कि उन्हें वजीफा क्यों दिया जाता है।

एक अन्य चरित्र का मार्मिक चित्रण श्याम मुंशी ने 'शंभू डांसर' शीर्षक से किया है। शमसुद्दीन बेहद गरीबी में जिन्दगी गुजारने वाले जिंदादिल इंसान थे। वे आजीविका के लिए गल्ला मंडी में हमाली करते थे। बड़ी बात यह कि वे अपने काम में मज़ा लेते थे। आश्चर्यजनक रूप से वे अखाड़े में पहलवान के रूप में कुश्ती भी लड़ते थे। जहां लेखक की एक विशेष टिप्पणी यह भी है कि भोपाल के बहुत से पहलवान रोजी-रोटी के लिए हम्माली करते थे। यह सूचना सामंती समय की चमक के मिथ को तोड़ती है। लेखक ने आश्चर्य के साथ शम्भू को अखाड़े में एक पहलवान से कुश्ती लड़ते देखा। कुश्ती बराबरी पर छूटी। किसी ने शम्भू से कहा कि आज तो तुम हारते-हारते बचे। शम्भू का उत्तर था 'मियां मैं पिट भी जाता तो मेरा क्या जाता, यह कुश्ती तो दूध, घी और बादाम से सूखी रोटी की थी। ग़नीमत है कि सूखी रोटी की इज्ज़त बच गई।' उसी शम्भू के डांसर रूप पर श्याम मुंशी सर्वाधिक चकित हुए जब उन्होंने किसी कार्यक्रम में, बाक़ायदा संगतकारों के साथ शम्भू को नृत्य करते देखा। 'शम्भू' अनोखा किरदार है जिस पर न्यौछावर हुआ जा सकता है और वक्त को कोसा जा सकता है। लिखने को बहुत कुछ लिखा जा सकता है लेकिन अंत में इस कृति भी भाषा पर दो शब्द। पुराने भोपाल की भाषा का अपना लहज़ा था और सामान्य जन के बोलने की एक अदा थी। अदा कैसी थी इसकी झलक श्याम मुंशी अपने चरित्र के माध्यम से दे चुके हैं। स्वयं उनकी भाषा का एक अपना भोपाली अंदाज है। जिस तरह दिल्ली, लखनऊ या हैदराबाद की अपनी भाषा थी वैसे ही नवाबी दौर की औपचारिकता से सनी हुई उर्दू मिश्रित हिन्दी श्याम मुंशी की कृति को पठनीय बनाती है। यह पारंपरिक लहज़ा और आम बोलचाल के मिश्रण से बना रसायन है। उनके अंदाजे बयां का एक ही उदाहरण पेश है। भोपाल के रचनाकारों के विषय में चर्चा करते हुए अंत में वे लिखते हैं- 'और आखिर में यह ख़ाकसार श्याम मुंशी। लोगों का कहना है कि यह भी अफ़साने तो लिख लेता है।'

यह किताब का अंतिम वाक्य है। वाह, क्या बात है जनाब श्याम मुंशी साहब!■